मन की शक्तियाँ
तथा
जीवनगठन की साधनायें

स्वामी विवेकानन्द

श्रीरामकृष्ण आश्रम
नागपुर, मध्यप्रान्त

१९४९

वक्तव्य

मनुष्य यदि जीवन के चरम लक्ष्य अर्थात् पूर्णत्व को प्रा
है तो उसके लिए यह आवश्यक है कि वह अपने मन के
भाँति परख ले। मनकी शक्तियाँ सचमुच बड़ी ही आश्चर्य
विवेकानन्दजी ने इस पुस्तक में इन शक्तियों की बड़ी अ
विवेचना की है तथा उन्हें प्राप्त करने के साधन भी बताए है
एक सिद्ध महात्मा थे; उन्हें उन साधनाओं का पूर्ण ज्ञान था
साधक चरम उद्देश्य अर्थात् आत्मानुभूति प्राप्त कर सकता है
ये साधनाएँ भिन्न भिन्न व्यक्तियों के स्वभाव तथा उनकी
अलग अलग हो सकती हैं। और इस पुस्तक में स्वामीजी ने
को व्यवहार में लाने के लिए वे उपदेश तथा सुझाव दे दिए
लिए वास्तव में बड़े उपयोगी सिद्ध होंगे।

श्री पं. राजदेवजी तिवारी, एम. ए., साहित्यरत्न , के प्रति हम
परम कृतज्ञ हैं जिन्होंने इस पुस्तक का अनुवाद बड़ी क किया है।

श्री पं. विद्याभास्करजी शुक्ल, एम. एस-सी., डी., प्राध्यापक,
कालेज आफ साइन्स, नागपुर, को भी हम धन्यवाद जिन्होंने इस पुस्तक
के प्रूफ-संशोधन में हमें बहुमूल्य सहायता दी है।

हमें विश्वास है कि इस पुस्तक से पाठकों का ही हित होगा।

नागपुर
१-११-१९४९

काशक

अनुक्रमणिका

स्वामी विवेकानन्द

१. मन की शक्तियाँ

(लास एंजिल्स, कैलिफोर्निया में स्वामी विवेकानन्दजी द्वारा दिया गया भाषण, जनवरी सन् १९००)

सम्पूर्ण जगत में सर्वदा से ही किसी अलौकिक शक्ति में विश्वास चलता आ रहा है। हममें से भी सभी ने अलौकिक घटनाओं के विषय में सुना होगा और बहुतों ने तो ऐसी चमत्कारपूर्ण अलौकिक घटनाओं का व्यक्तिगत रूप से अनुभव भी किया होगा। अपनी आँखों देखी कुछ ऐसी ही घटनाओं का वर्णन करता हुआ मैं इस विषय का प्रारम्भ करना चाहता हूँ।

एक बार मैंने एक व्यक्ति के विषय में सुना कि वह किसी के भी मन के गुप्त प्रश्नों का उत्तर तत्काल दे देता है। यही नहीं, मुझसे बताया गया कि वह भविष्य में घटित होने वाली घटनाओं को भी पहिले ही से बता देता है। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ और कुछ साथियों को लेकर उस व्यक्ति के पास पहुँच गया। हम सभी ने अपने अपने मन

में अपने अपने प्रश्न निश्चित कर लिये थे और भूल बचाने के लिये कागज पर लिख कर उन्हें अपनी जेबों में रख लिये थे। उस व्यक्ति ने ज्यों ही हममें से एक को देखा हमारे सारे गुप्त प्रश्नों को दुहरा ही नहीं दिया वरन् उनके उत्तर भी दे दिये। तत्पश्चात् उसने कागज़ पर कुछ लिखा और उसे मोड़ कर उस पर मुझसे हस्ताक्षर करने को कहा। ऐसा करने के बाद उसके कथनानुसार मैंने उस कागज़ की पुड़िया को बिना देखे ही तब तक के लिये अपनी जेब में रख लिया जब तक वह स्वयं उसे दिखलाने के लिये न कहे। मेरे सब साथियों के साथ भी ऐसा ही किया गया। तत्पश्चात् भविष्य में घटने वाली कुछ घटनाओं पर प्रकाश डालते हुए उसने हमसे कहा कि हम किसी भी भाषा के किसी भी शब्द या वाक्य को अपने मन में सोच लें। वह संस्कृत बिल्कुल नहीं जानता ऐसा समझ कर मैंने संस्कृत भाषा के एक लम्बे वाक्य को मन में रख लिया। पर उसकी आज्ञा-नुसार जब मैंने जेब में से निकाल कर कागज़ के उस टुकड़े को देखा तो महान आश्चर्य हुआ कि वह संस्कृत का बड़ा वाक्य ज्यों का त्यों वहाँ लिखा हुआ है! एक घंटा पहिले उस कागज़ पर उस वाक्य को लिखते समय अपनी बात की पुष्टि के लिये उसने यह भी सूचित कर दिया था कि यह व्यक्ति इसी वाक्य को अपने मन में निश्चित करेगा और यह सत्य निकला। मेरे दूसरे साथी से भी—जिनकी जेब में भी भी वैसा ही कागज़ का टुकड़ा रखा हुआ था—अपने मन में कोई वाक्य सोच लेने के लिये कहा गया। उन्होंने

अरबी भाषा का एक वाक्य निश्चित किया जो कुरान से लिया गया था। पर वह अरबी वाक्य भी उनकी जेब में रखे हुये कागज़ के टुकड़े पर ज्यों का त्यों लिखा हुआ मिला। मेरे साथियों में से एक डाक्टर थे। उन्होंने जर्मन भाषा में लिखी गई एक वैद्यक की पुस्तक से एक वाक्य अपने मन में रख लिया, पर वह जर्मन भाषा का वाक्य भी उनकी जेब वाले कागज़ के टुकड़े पर लिखा हुआ मिला।

यह सोच कर कि शायद उसने पहिली बार मुझे किसी प्रकार धोखा दे दिया हो, कुछ दिन पश्चात् फिर कुछ दूसरे साथियों को लेकर फिर मैं उस व्यक्ति के पास गया, पर इस बार भी वह अपने चमत्कार प्रदर्शन में आश्चर्य जनक रूप में सफल रहा।

एक बार जब मैं हैदराबाद में था, मुझसे कुछ लोगों ने एक ऐसे ब्राह्मण के विषय में चर्चा की जो इच्छित वस्तुओं को अज्ञात स्थान से अज्ञात रूप में मँगा दिया करते थे। ये महाशय एक प्रतिष्ठित व्यापारी थे। उनसे मैंने अपना चमत्कार दिखाने को कहा। संयोगवश उन्हें एक दिन ज्वर हो आया। भारतवर्ष में साधारणतः यह विश्वास किया जाता है कि यदि कोई पवित्रात्मा किसी अस्वस्थ मनुष्य के सिर पर हाथ रख दे तो वह शीघ्र ही स्वस्थ हो जाता है। अतएव ब्राह्मण देवता मेरे पास आकर अपने सिर पर हाथ रखने का आग्रह करने लगे। मैंने स्वीकार लिया और उनसे अपना चमत्कार दिखलाने का वचन भी ले लिया। स्वस्थ होने के बाद अपना वचन पूरा करने के लिये एक दिन वे आ पहुँचे। केवल एक लंगोटी छोड़कर

हम लोगों ने उनके पास के सब वस्त्र ले लिये। ठंढ पड़ रही थी, इसलिये अपने पास का कम्बल मैंने उन्हें ओढ़ने के लिये दे दिया और एक कोने में बैठ जाने को कहा। पूरी ५० आँखें उनकी ओर बारीकी से देख रही थीं। मनोवांछित वस्तुओं के नाम काग़ज़ पर लिख देने के लिये जब उन्होंने कहा तब हम लोगों ने ऐसी ऐसी वस्तुओं के नाम लिख लिये जो उस प्रदेश में पैदा ही नहीं होती थीं—जैसे अंगूर के गुच्छे, नारंगियाँ आदि। कागज़ के टुकड़े उन्हें दे दिये गये। थोड़ी ही देर में देखते क्या हैं कि शरीर पर लिपटे हुए उस कम्बल के अन्दर से सारी की सारी वस्तुएँ ढेर की ढेर निकलती चली आ रही हैं। उन निकली हुई वस्तुओं को यदि तौला जाता तो मेरा अंदाज था कि वे तौल में उस ब्राह्मण महोदय के शरीर के तौल से दूनी भारी तो अवश्य ही होतीं! उन फलों को खाने के लिये उन्होंने कहा, पर मायाजन्य अथवा कृत्रिम समझ कर खाने में हमें हिचकिचाहट होने लगी, परन्तु जब उन्होंने स्वयं खाना प्रारम्भ कर दिया तो हम लोगों ने भी खाया और देखा कि स्वाद में कोई अन्तर नहीं है।

अन्त में ताज़े गुलाबों का ढेर लगा कर उन्होंने अपना चमत्कार प्रदर्शन बन्द कर दिया। उस ढेर का प्रत्येक गुलाब सुन्दर और पूर्ण रूप से खिला हुआ था। उसकी पंखुड़ियाँ ताज़ी और कोमल थीं तथा उन पर प्रातःकालीन ओस की बूँदें पड़ी थीं। गुलाब के सुन्दर फूलों के इतने बड़े ढेर को देखकर हम लोग आश्चर्य करने लगे। पूछने पर

उन सज्जन ने यही बतलाया कि यह सब हाथ की सफाई ही है। जो कुछ भी हो केवल हाथ की सफाई के बल पर यह सब कर दिखाना असम्भव ही मालूम पड़ा। इतनी मात्रा में इतनी वस्तुएँ भला कहाँ से लाई जा सकती हैं?

इस प्रकार की बहुत सी चीज़ें मैंने देखी हैं और आप भी यदि भारतवर्ष का पर्यटन करें तो भिन्न भिन्न स्थानों में आपके सामने भी इस प्रकार की सैकड़ों चीजें आयेंगी। भारत ही नहीं, सभी देशों में इस प्रकार की घटनायें होती रहती हैं। इस देश में भी इस प्रकार की बहुत सी चमत्कारपूर्ण घटनायें देखने को मिलेंगी। यह ठीक है कि इन सबमें बहुत कुछ धोखेबाज़ी है, पर इस प्रकार की धोखेबाज़ी के पीछे कुछ वास्तविकता भी रहती है जिसके अनुकरण करने का प्रयत्न किया जाता है। आप को यह मानना ही पड़ेगा कि अनुकरण के लिये भी कुछ न कुछ वास्तविकता चाहिये। वास्तविकता के बिना अनुकरण सम्भव ही नहीं।

आज से सहस्रों वर्ष पूर्व अति प्राचीन काल में इस प्रकार के चमत्कार आज की अपेक्षा अधिक दिखाई पड़ते थे। मेरा अनुमान है कि जब किसी देश की आबादी घनी हो जाती है तब उसकी मानसिक शक्ति निर्बल पड़ जाती है; इसके विपरीत जब किसी देश की आबादी विरली रहती है तब मानसिक शक्ति अपेक्षाकृत बढ़ी चढ़ी रहती है। प्रत्येक वस्तु को सूक्ष्म विश्लेषक दृष्टि से विचार करने की जिज्ञासा रखने वाले हिन्दुओं ने इन चीज़ों को भी अपने

हाथ में लिया और इस दिशा में अनुसंधान किया। इस प्रकार अनुसंधान करने का परिणाम यह हुआ कि वे कुछ आश्चर्य जनक परिणामों पर पहुँचे और उन्होंने इसका एक विज्ञान ही बना डाला। उन्हें ज्ञात हो गया कि ऐसे चमत्कारों में असाधारणत्व भले ही हो, पर वे सब स्वाभाविक ही हैं। उनमें अलौकिकता कहीं नहीं है। वे ही ठीक उसी तरह नियमों से बँधे हुए हैं जिस प्रकार संसार के और भौतिक दृश्य हैं। प्रकृति ने किसी व्यक्तिविशेष को इस प्रकार की चमत्कारपूर्ण शक्ति देकर पैदा नहीं किया है, वरन् इस प्रकार की शक्ति क्रमपूर्वक अध्ययन और अभ्यास से प्राप्त भी की जा सकती है। इस प्रकार के विज्ञान को वे राजयोग कहते हैं। सहस्रों की संख्या में भारतवर्ष में ऐसे लोग हैं जो इस विज्ञान का अध्ययन और अभ्यास करते हैं तथा सम्पूर्ण राष्ट्र के लिये यह दैनिक पूजापाठ का एक अंग ही बन गया है।

जिस निष्कर्ष पर वे पहुँचे हैं वह यह है कि यह सब असाधारण शक्तियाँ मनुष्य-मन में विद्यमान हैं। यह मन सृष्टि में अविच्छिन्न रूप से विद्यमान मन का एक अंग या अंश ही है। प्रत्येक मन एक दूसरे से निकटतम रूप में सम्बन्धित है और वह जहाँ कहीं भी रहे सम्पूर्ण विश्व से उसका घनिष्ट और प्रत्यक्ष सम्बन्ध है।

आपने क्या कभी विचार-संचरण का दृश्य देखा है? एक स्थान पर बैठा हुआ मनुष्य जो कुछ सोचता है वह विचार ठीक उसी रूप में दूसरे स्थान पर बैठे हुए मनुष्य के मन में प्रकट हो

जाता है। संयोगवश नहीं वरन् तैयारी के साथ एक व्यक्ति दूरपर बैठे हुए दूसरे व्यक्ति के पास संदेश भेजना चाहता है और वह व्यक्ति जानता है कि संदेश आ रहा है तथा वह उसे ठीक उसी रूप में प्राप्त भी कर लेता है। इस क्रिया में दूरी का कोई महत्व नहीं है। विचार अपनी यात्रा प्रारम्भ करता है और किसी भी स्थान पर बैठे हुए दूसरे व्यक्ति के पास पहुँच जाता है। वह व्यक्ति उसे ठीक ठीक समझ भी लेता है। यदि मेरा मन आप के मन से सर्वथा भिन्न होता तो इस प्रकार के विचार-संचरण की क्रिया कैसे सम्भव थी? साधारण अवस्थाओं में मेरा विचार आप तक सीधे सीधे नहीं पहुँचता। पहिले वह आकाश-स्थित लहरों (Ethereal Vibrations) में घुल मिल जाता है और वे लहरें तुम्हारे मस्तिष्क में प्रवेश करती हैं; फिर वहाँ पहुँच कर वे तुम्हारे विचार का रूप ग्रहण करती हैं। यहाँ पर विचार आकाश में लय हो जाते हैं और वहाँ जाकर वे फिर अपने असली रूप में पुनः प्रकट हो जाते हैं। यह क्रिया चक्रवत् है, पर मानसिक विचार-संचरण वाली विधि में ऐसी कोई बात नहीं है, उसमें वह बिना रूप-परिवर्तन के ही सीधे सीधे एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँच जाता है।

इससे स्पष्ट मालूम पड़ता है कि मन अविच्छिन्न है। योगियों ने ऐसा ही कहा भी है। मन विश्वव्यापी (Universal) है। आप का मन, मेरा मन और दूसरों के छोटे छोटे मन सभी उस विश्व-व्यापी अविच्छिन्न मन के अंग हैं। उनकी अवस्था महासागर में उठी

हुई छोटी छोटी लहरों के समान ही है। और इसी अविच्छिन्नता के कारण हम एक दूसरों के पास विचारों को अबाधित रूप से भेज सकते हैं।

अपने चारों ओर जो हो रहा है उसे आप अच्छी तरह देख रहे हैं। यह सम्पूर्ण विश्व प्रभावात्मक है। हमारी शक्ति का जो अंश हमारे शरीर के पोषण में व्यय होता है उसे छोड़ बाकी बची हुई सम्पूर्ण शक्ति दूसरों को प्रभावित करने में ही लगती है। हमारा शरीर, हमारे सद्‌गुण, हमारी बुद्धि और हमारी आध्यात्मिकता सभी निरन्तर दूसरों को प्रभावित करते रहते हैं और स्वयं प्रकाशित होते रहते हैं। यही क्रिया हमारे चारों ओर निरन्तर होती रहती है। एक ठोस उदाहरण लेकर हम इसे और स्पष्ट कर सकते हैं—एक व्यक्तिविशेष आप के पास आता है, वह विद्वान है, उसकी भाषा बड़ी मधुर है और पर्याप्त समय तक आप से वार्तालाप भी करता है, पर आपके ऊपर प्रभाव जमाने में वह सर्वथा असफल रहता है और वहीं एक दूसरा व्यक्ति आता है जो अपनी टूटी फूटी भाषा में कुछ ही शब्द बोल पाता है, फिर भी वह आप पर विशेष प्रभाव जमा जाता है। आपमें से बहुतों ने यह देखा है। अतएव यह स्पष्ट है कि केवल शब्दों से प्रभाव नहीं जमता। शब्द और विचार दोनों मिलकर किसी दूसरे पर प्रभाव जमाने के कार्य में केवल एक तिहाई अंश का काम देते हैं, बाकी दो तिहाई तो व्यक्ति का

व्यक्तित्व ही काम देता है। व्यक्तित्व में ही वह आकर्षण-शक्ति है जो दूसरों पर प्रभाव जमाती है।

हम लोगों के घरों में भी मुखिया होते हैं पर सभी मुखिया कुटुम्बियों पर प्रभाव डालने में सफल नहीं होते। कुछ सफल होते हैं तो कुछ असफल। ऐसा क्यों? हम लोग अपनी असफलता के लिये दूसरों को दोषी ठहराते हैं। जब हमें असफलता मिलती है तो हम कह उठते हैं कि अमुक अमुक व्यक्ति हमारी असफलता के कारण हैं। असफलता में कोई अपना दोष या अपनी कमज़ोरी स्वीकार करना नहीं चाहता। प्रत्येक व्यक्ति अपने को निर्दोष समझता है और किसी दूसरे व्यक्ति या वस्तु को अपनी असफलता का कारण बतलाता है। कभी कभी तो भाग्य के मत्थे सब दोष मढ कर छुट्टी ले ली जाती है। जब कुटुम्ब के मुखिया अपनी व्यवस्था में असफल हों तो उन्हें स्वयं अपने से ही प्रश्न पूछना चाहिये कि ऐसा क्यों होता है कि कोई तो अपनी व्यवस्था में सफल होता है और कोई नहीं? तब आप को ज्ञात होगा कि इसका कारण है मनुष्य-विशेष, उसकी उपस्थिति, उसका व्यक्तित्व। इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

मनुष्य-समाज के बड़े बड़े नेताओं को भी लें तो हमें सदा यही ज्ञात होगा कि उनकी सफलता का रहस्य उनका व्यक्तित्व ही था। भूतकालीन बड़े बड़े लेखकों और विचारकों को लें और देखें कि उन्होंने भी वास्तव में कितना सोचा है। उन सारे प्राचीन लेखों

को देखें जिन्हें भूतकालीन मनुष्य-समाज के नेताओं ने हमें दे रखा है; उनकी प्रत्येक पुस्तक को सामने रख कर उसका मूल्य आँकें तो हमें पता लगेगा कि इस जगत में नये और मौलिक विचार बहुत ही कम हैं। उनकी पुस्तकों में दिये गये विचारों का अध्ययन करें तो वे लेखक हमारे लिये बहुत महान नहीं ज्ञात होते, पर हम यह भी जानते हैं कि वे अपने युग में महान थे। किस चीज़ ने उन्हें इतना महान बनाया था? उन्हें महान बनाने का श्रेय न उनके विचारों को है, न उनके ग्रंथों को है और न उनके व्याख्यानों को ही, वह तो कुछ दूसरी ही वस्तु थी और चली गई—वह था उनका व्यक्तित्व। जैसा कि मैंने पहिले ही बता दिया है कि दूसरों पर प्रभाव जमाने में मनुष्य का व्यक्तित्व दो तिहाई और उसकी बुद्धि तथा भाषा केवल एक तिहाई काम करते हैं। सच्चा मनुष्यत्व या उसका व्यक्तित्व ही वह वस्तु है जो हम पर प्रभाव डालती है। हमारे कर्म हमारे व्यक्तित्व के बाह्य आविष्कार मात्र हैं। प्रभावी व्यक्तित्व कर्म के रूप से प्रकट होगा ही—कारण के रहते हुए कार्य का आविर्भाव अवश्यम्भावी है।

हमारी सभी प्रकार की शिक्षाओं का उद्देश्य तो मनुष्य के इसी व्यक्तित्व का निर्माण होना चाहिये। परन्तु इसके विपरीत हम केवल बाहर से पालिश करने का ही प्रयत्न करते हैं। यदि भीतर कुछ सार न हो तो बाहरी रंग चढ़ाने से क्या लाभ? शिक्षा का लक्ष्य अथवा उद्देश्य तो मनुष्य का विकास ही है। वह व्यक्ति, जो

दूसरों को प्रभावित करता है या यों कहें कि जो दूसरों पर जादू कर देता है, शक्ति का भण्डार होता है। जब वह तैयार होता है तो जो चाहता है कर डालता है। उसका व्यक्तित्व जहाँ पहुँचता है वहीं कार्य होने लगता है।

हम जानते हैं कि यद्यपि वास्तविकता यही है पर कोई भी भौतिक विधि-नियम इसकी व्याख्या अथवा मीमांसा नहीं कर सकता। रसायन शास्त्र अथवा भौतिक शास्त्र के ज्ञान से हम इसे कैसे समझा सकते हैं? आक्सिजन, हाइड्रोजन और कार्बन किस मात्रा में मिलकर ऐसा परिणाम उपस्थित कर सकते हैं? कितने परमाणु और किस दशा में एकत्रित होकर ऐसा कार्य कर सकते हैं? कितने जीव-कोष (Cells) इस रहस्यमय व्यक्तित्व को समझानें में समर्थ हो सकते हैं? फिर भी हम देखते हैं कि यह सत्य है। यही नहीं, वही (व्यक्तित्व ही,) सच्चा मनुष्य है; वही चलता फिरता है और काम करता है; प्रभाव जमाता है; अपने साथियों, अपने सम्पर्क में आने वालों को चलाता है और कालकवलित भी हो जाता है; उसकी प्रतिभा, उसके ग्रंथ और उसके कार्य ही उसके चिन्ह-स्वरूप रह जाते हैं। इन सबके विषय में गम्भीरता से सोचें। धर्मोपदेशकों और बड़े बड़े दर्शनिकों की तुलना करें। दार्शनिकों ने बड़े बड़े ग्रन्थ लिखे पर उन्होंने शायद ही किसी व्यक्ति के अन्तर-प्रदेश पर प्रभाव जमाया हो। इसके विपरीत धर्मोपदेशकों ने अपने सामने अपने जीवन- काल में ही कितने ही देशों को झुका दिया!

यह अन्तर केवल उसी व्यक्तित्व का है। उस दार्शनिक का व्यक्तित्व निर्बल और उस धर्मोपदेशक का व्यक्तित्व महान है। पहिले में हम बुद्धि के दर्शन करते हैं और दूसरे में स्वयं जीवन का स्पर्श करते हैं। एक में यह केवल रसायनिक क्रिया है जहाँ बहुत से रसायनिक पदार्थ एक जगह रख दिये जाते हैं और जो नियमानुसार धीरे धीरे एक दूसरे से मिलकर विशेष परिस्थिति में जल उठते हैं, प्रकाश पैदा कर देते हैं और कभी कभी असफल भी रह जाते हैं। पर दूसरे में एक प्रकार की ऐसी ज्योति पैदा हो जाती है जिसका प्रकाश शीघ्र फैलकर औरों को प्रकाशित कर देता है।

योग का विज्ञान इस बात का दावा करता है कि उसने उन विधियों का पता लगा लिया है जिनसे व्यक्तित्व आकर्षक बनता है और कोई भी व्यक्ति उन नियमों का पालन कर अपने व्यक्तित्व को शक्तिसम्पन्न बना सकता है। व्यक्तित्व की यह शक्तिसम्पन्नता सभी प्रकार के शिक्षण का रहस्य है और व्यवहार जगत की एक प्रधान वस्तु है। इसका उपयोग सबके लिये है—यह सब पर लागू होता है। गृहस्थ, निर्धन, धनिक, व्यापारी तथा अध्यात्मवादी सभी के लिये व्यक्तित्व को शक्तिसम्पन्न बनाना बहुत बड़ी चीज़ है। भौतिक विधि-नियमों के पीछे कुछ ऐसे भी विधि-नियम हैं जो बड़े ही सूक्ष्म हैं और जिन्हें हम अच्छी तरह जानते भी हैं। कहने का तात्पर्य यह कि भौतिक जगत, मानसिक जगत अथवा आध्यात्मिक जगत ऐसी कोई भिन्न भिन्न वस्तु नहीं हैं वरन् सब एक हैं। इन

सब की स्थिति गावदुमाकार है—स्थूल, उससे सूक्ष्म (सूक्ष्मतर) और सबसे सूक्ष्म (सूक्ष्मतम)। यही सबसे सूक्ष्म आत्मा है और सबसे स्थूल भाग शरीर है। यह अन्तर्जगत में जैसा, वैसा ही बहिर्जगत में भी है। हमारे सामने की सम्पूर्ण सृष्टि स्थूल रूप है। यही स्थूल सूक्ष्मतर और सूक्ष्मतम होकर ईश्वर की संज्ञा प्राप्त कर लेता है।

हम यह भी जानते हैं कि सब से अधिक शक्ति उस सूक्ष्म में ही सन्निहित है न कि स्थूल में। एक व्यक्ति भारी बोझ उठाता है, परिणाम स्वरूप उसकी मांसपेशियाँ बाहर निकल आती हैं और उसके सम्पूर्ण शरीर पर परिश्रम-जन्य चिन्ह दिखलाई पड़ते हैं। हम सोचते हैं कि उसकी मांसपेशियों में शक्ति है, पर वास्तव में ऐसा नहीं है। शक्ति तो उन बारीक बारीक स्नायुओं में है जो मांस-पेशियों तक पहुँच कर उन्हें शक्तिसम्पन्न बनाती हैं। इनमें से यदि कोई स्नायु अथवा ज्ञान-तन्तु कट जाय और उसका सम्बन्ध मांसपेशियों से छूट जाय तो वे मांसपेशियाँ कार्य करने में सर्वथा अयोग्य बन जाती हैं। ये सूक्ष्म स्नायु अपनी शक्ति किसी दूसरी सूक्ष्मतर वस्तु से लाते हैं और वह किसी और सूक्ष्मतर से जिसे हम विचार कह सकते हैं तथा वह भी अपने से सूक्ष्मतर से। इस प्रकार हम देखते हैं कि सूक्ष्म ही शक्ति का आधार है। यह ज़रूर है कि हम स्थूल की क्रिया को ही देख पाते हैं। और सूक्ष्म के कार्य हमारी भौतिक आँखों से परे की वस्तु रहते हैं। जब स्थूल में कम्पन पैदा होता है तो हम उसे देख पाते हैं और इसीलिये हम उसे ही क्रिया-

शक्ति-सम्पन्न मानने लगते हैं, परन्तु सम्पूर्ण शक्ति सूक्ष्म में ही है उस। सूक्ष्म पदार्थ की क्रिया हम नहीं देख पाते इसका कारण शायद यही है कि उस क्रिया की गति अत्यन्त तीव्र और सूक्ष्म है। परन्तु यदि कोई विज्ञान या वैज्ञानिक अनुसंधान उन सूक्ष्म तत्वों को हमारी पहुँच के अन्दर लादे जो स्थूल में उत्पन्न होने वाली क्रिया के वास्तविक कारण हैं तो स्थूल की यह क्रिया हमारी इच्छानुगामिनी बन सकती है। झील के पानी की निचली सतह से जो बुलबुला सूक्ष्म रूप में ऊपर उठता है उसे हम तब तक नहीं देख पाते जब तक कि वह पानी की ऊपरी सतह पर आकर अपना स्थूल आकार नहीं ग्रहण कर लेता, ठीक उसी तरह हम विचारों को भी उनकी सूक्ष्मता के कारण उस समय तक नहीं देख पाते जब तक कि वे बहुत विकसित नहीं हो जाते अथवा कार्य का रूप नहीं धारण कर लेते। हम निरन्तर इस बात की शिकायत करते रहते हैं कि विचार अथवा कार्य हमारे अनुशासन में नहीं रहते, परन्तु ऐसा हम कर ही कैसे सकते हैं! यदि हम सूक्ष्म को अपनी पकड़ में ले लें, यदि हम विचारों के मूल रूप को अपनी शक्ति की सीमा में पकड़ लायें तभी यह सम्भव है कि हम सम्पूर्ण को अपने अनुशासन की परिधि में खींच सकेंगे। अब यदि ऐसा कोई ढंग हो जिससे हम उन सूक्ष्म शक्तियों अथवा सूक्ष्म मूल कारणों की सूक्ष्म परीक्षा कर सकें, शोध कर सकें अथवा समझ सकें और अन्त में उन्हें ठीक ठीक पकड़ सकेंगे तभी यह सम्भव है कि हम अपने को अपनी इच्छानुसार चला सकें।

वह मनुष्य जिसने अपने मन पर अधिकार कर लिया है दूसरों के मन पर भी अधिकार कर सकेगा। यही कारण है कि पवित्रता और नीतिमत्ता सर्वदा से ही धर्म के उद्देश्य रहते चले आये हैं। नीतिमान तथा पवित्रात्मा ही अपने ऊपर अधिकार रखता है। सभी मन एक उसी विराट मन के अंग हैं। जो व्यक्ति मिट्टी के एक साधारण से ढले को ठीक ठीक पहचानता है वही सृष्टि की सम्पूर्ण मिट्टी के रहस्य को जान सकता है। जो अपने मन को ठीक ठीक समझता है और उस पर अधिकार रखता है वह विश्व के सभी मनों के वास्तविक रूप को समझता है और उन पर अपना अधिकार रखता है।

यदि हम इन सूक्ष्म शक्तियों पर अधिकार करलें तो बहुत सी शारीरिक व्याधियों से छुटकारा पा सकते हैं, बहुत सी चिन्ताओं से पिण्ड छूट सकता है और बहुत सी असफलताओं को सफलता में परिवर्तित कर सकते हैं। यह तो उपयोगिता की बात हुई पर इसके अतिरिक्त कुछ और भी है जो इससे अधिक महत्वपूर्ण है।

अब मैं आप से एक सिद्धान्त की बात कहूँगा जिसके विषय में तर्क नहीं करूँगा वरन् आप के समक्ष सीधे सादे ढंग से उसके परिणाम को रख दूँगा। प्रत्येक मनुष्य अपनी बाल्यावस्था में ठीक उन्हीं स्थितियों से गुज़रता है जिनसे होकर सम्पूर्ण मानवजाति आगे बढ़ी है। अन्तर केवल इतना ही है कि इस क्रिया में मानव जाति ने सहस्रों वर्ष लगाये हैं और बालक कुछ ही वर्षों में सब स्थितियों को पार कर लेता है। बालक पहिले प्राचीन जंगली मानव की दशा

में रहता है और सुन्दर सी तितली को अपने पैरों के नीचे कुचल देता है। बालक पहिले ठीक उसी रूप में रहता है जिस रूप में उसके असंस्कृत पूर्व पुरुष प्राचीन काल में रहते थे। जैसे जैसे वह बढ़ता है उसे भिन्न भिन्न स्थितियों को पार करता हुआ ही अपनी जाति की विकास-दशा को प्राप्त करता है। अन्तर केवल इतना ही रहता है कि वह शीघ्रता करता है।

अब आप सारी मानव—जाति को अथवा पशु, मानव तथा छोटे छोटे सभी जीवों को एक साथ ले लें तो आप को ज्ञात होगा कि सब का एक ही उद्देश्य है जिसकी ओर सभी दौड़ते चले जा रहे हैं, इसे हम 'पूर्णता' कहें तो ठीक होगा। कुछ व्यक्ति—स्त्री या पुरुष पैदा होते हैं जो मानव के पूर्ण विकास के पूर्व-निदर्शक होते हैं। बार बार जन्म लेकर धीरे धीरे उस पूर्णता की ओर पहुँचने के बजाय वे अपने जीवन के चन्द वर्षों में ही मानो उस तक दौड़ जाते हैं। और हम जानते हैं कि हम भी उन सभी स्थितियों की क्रियाओं को पूर्ण करने में शीघ्रता कर सकते हैं पर यह तभी सम्भव है जब हम अपने प्रति सच्चे हों। संस्कृति और सभ्यता से अपरिचित कुछ व्यक्ति यदि एक द्वीप पर रख दिये जायँ और उन्हें भोजन, वस्त्र और रहने की जगह का आवश्यक प्रबन्ध कर दिया जाय तो वे धीरे धीरे बढ़कर संस्कृति के उच्च उच्च स्तरों पर पहुँचते रहेंगे। हम यह भी जानते हैं कि इस विकास की क्रिया में शीघ्रता भी की जा सकती है यदि उन्हें अतिरिक्त सहायक वस्तुएँ प्रदान की जायँ।

हम वृक्ष की बाढ़ में भी सहायता करते हैं। क्या ऐसा नहीं होता? यदि इन वृक्षों को प्रकृति पर छोड़ दिया जाता तो भी वे विकसित हुये होते, पर हाँ, समय अवश्य अधिक लगता। हमारी सहायता से वे कम समय में ही अपनी बाढ़ की पूर्णता को प्राप्त कर लेते हैं। हम लोग स्वयं भी निरन्तर ऐसा ही करते जा रहे हैं और कृत्रिम उपायों द्वारा वस्तुओं के बढ़ाव या विकास में शीघ्रता कर रहे हैं। यदि यह ठीक है तो हम मानव के विकास में क्यों शीघ्रता नहीं कर सकते? मानव-मात्र को एक साथ एक स्तर पर लेकर हम ऐसा कर सकते हैं। दूसरे देशों में उपदेशक क्यों भेजे जाते हैं? इसी-लिये कि उनकी सहायता से हम सम्पूर्ण मानव जाति के विकास में शीघ्रता कर सकें। अब प्रश्न उठता है कि क्या हम व्यक्ति (व्यष्टि) के विकास में शीघ्रता नहीं कर सकते? कर सकते हैं, उत्तर यही होगा। क्या हम उस शीघ्रता की सीमा भी निर्धारित कर सकते हैं? नहीं, हम यह ठीक ठीक नहीं बता सकते कि मनुष्य अपने इस जीवन में कहाँ तक आगे बढ़ सकता है। आपके पास ऐसा कोई कारण नहीं है कि आप यह कह सकें कि अमुक मनुष्य इतना ही कर सकता है, इससे आगे नहीं जा सकता। परिस्थितियाँ, आश्चर्य जनक रूप से उसके विकास की क्रिया में शीघ्रता कर सकती हैं। फिर पूर्णता तक पहुँचने की क्रिया की गति के लिये क्या कोई सीमा निर्धारित की जा सकती है? अतएव इससे क्या निष्कर्ष निकलता है? यही न, कि अपनी जाति या वर्ग के ढंग का 'पूर्ण मनुष्य' जो लाखों वर्षों

में विकसित होते होते बनता, आज ही बन सकता है। बड़े बड़े योगी यही कहते हैं कि बड़े बड़े अवतार या ईश्वर-दूत ऐसे ही व्यक्ति होते हैं जो अपने इसी जीवन में पूर्णता प्राप्त कर लेते हैं। इस प्रकार के व्यक्ति विश्व इतिहास के सब युगों में और सब समय हमारे सामने आते रहे हैं। थोड़े ही दिन की बात है कि एक ऐसे व्यक्ति विद्यमान थे जिन्होंने सम्पूर्ण मानव जाति के विकास को अपने इसी जीवन में प्राप्त कर लिया था। विकास की यह क्षिप्र गति भी नियमों से बँधी हुई है। यदि हम इन नियमों का पता लगायें और इनके रहस्यों को समझ लें तथा इनका प्रयोग भी अपनी आवश्य-कताओं के लिये करें तो इसका परिणाम हमारा विकास होगा। हम अपने विकास अथवा प्रगति में शीघ्रता कर इसी जीवन में पूर्णता को प्राप्त कर लेंगे। हमारे जीवन का यह महत्वपूर्ण उच्च अंश है और मन तथा मन की शक्तियों के अध्ययन के विज्ञान का वास्तविक लक्ष्य यह 'पूर्णता' ही है। धन या अन्य किसी द्रव्य से दूसरों की सहायता करना और उन्हें अपने दैनिक जीवन को निर्विघ्न ले चलने के लिये शिक्षा देना तो केवल ऊपरी वस्तु है।

इस विज्ञान का उपयोग मनुष्य को पूर्ण बनाने की क्रिया में विशेष सहयोग देने का है, न कि इस बात में कि उसे छोड़ दिया जाय और वह अपने विकास की इस अन्तिम मंज़िल तक पहुँचने में युग बिता दे और उसकी अवस्था ठीक वैसी ही बन जाय जैसी भौतिक शक्तियों के हाथ में पड़े हुए साधारण खिलौने की होती है;

अथवा लकड़ी के उस छोटे से टुकड़े की होती है जो महासागर में लहरों के बीच इधर से उधर उद्देश्यहीन भटकता फिरता है। यह विज्ञान आपको शक्तिसम्पन्न देखना चाहता है ताकि अपने विकास की क्रिया को पूर्ण करने का कार्य आप प्रकृति पर न छोड़ कर अपने हाथ में लेलें और उसे इसी जीवन में प्राप्त करलें। यह एक महान और महत्वपूर्ण विचार है।

ज्ञान, शक्ति और आनन्द की दृष्टि से मानव उन्नति करता जा रहा है। मानवजाति के रूप में हम निरन्तर आगे बढ़ते जा रहे हैं। यह सत्य है—बिलकुल सत्य, पर क्या यह व्यष्टि की दृष्टि से भी सत्य है? कुछ सीमा तक तो सत्य है ही, पर फिर प्रश्न उठता है कि इसकी निश्चित सीमा कहाँ पर है? मैं तो अपनी इन आँखों से केवल कुछ गज़ की ही दूरी की चीजें देख पाता हूँ, पर एक ऐसा भी आदमी है जो आँखें मूँदकर दूसरे कमरे में रखे हुए पदार्थों को भी देख सकता है। तुम कहो कि इस बात पर तुम्हारा विश्वास नहीं होता तो शायद तीन सप्ताह में ही वह व्यक्ति तुम्हें भी ऐसा बना दे कि तुम भी वैसा ही करने लगो। यह विद्या तो किसी को भी सिखलाई जा सकती है। कुछ व्यक्ति तो पाँच मिनट में ही ऐसे बनाये जा सकते हैं कि वे दूसरे के मन की बातें जान जायँ। यह क्रिया तो प्रदर्शित भी की जा सकती है।

यदि यह सब सच है तो व्यष्टि के ज्ञान अथवा विकास की सीमा कहाँ निश्चित की जाय? यदि कोई व्यक्ति इस कमरे के

कोने में बैठे हुए एक दूसरे व्यक्ति के मन की बातों को जान सकता है तो क्यों नहीं वह दूसरे कमरे में बैठे हुए व्यक्ति के मन की बात जान सकता है ? यही नहीं, कहीं दूर किसी भी जगह बैठे हुए व्यक्ति के मन की बात भी वह क्यों नहीं जान सकता ? इसका उत्तर हम नकारात्मक रूप में नहीं दे सकते। हममें इतना साहस भी नहीं है कि हम कह दें कि यह सम्भव नहीं है। हम तो केवल इतना ही कह सकते हैं कि हम नहीं जानते कि यह कैसे सम्पन्न होता है। भौतिक विज्ञान के जानने वाले वैज्ञानिकों को इस बात का कोई अधिकार नहीं है कि वे कह दें कि यह सब सम्भव नहीं है। वे तो यही कह सकते हैं कि वे इस विषय में कुछ नहीं जानते। विज्ञान जगत की घटनाओं पर विचार करता है, उन्हें एकत्रित करता है, कुछ साधारण नियम बनाता है, और फिर अन्तिम सिद्धान्त को निकाल कर सत्य को सामने रखता है। परन्तु यदि हम घटित होने वाली घटना को ही न मानें तो भला विज्ञान कार्य ही कैसे कर सकता है ?

मनुष्य कितनी शक्ति प्राप्त कर सकता है इसकी कोई सीमा नहीं। भारतीय प्रकृति की यही विशेषता है कि यदि वह किसी बात की ओर आकर्षित होती है तो उसमें तल्लीन हो जाती है, खो जाती है और दूसरी बातों को भूल जाती है या उनकी ओर से उपेक्षावृत्ति ग्रहण कर लेती है। आप जानते हैं कि कितने प्रकार के विज्ञान ने भारत में जन्म लिया है। गणित ने यहाँ जन्म लिया। संस्कृत अंकों के आधार पर आप आज भी १, २, ३ आदि अंकों

से लेकर शून्य तक गिनते हैं। बीजगणित भी वहीं प्रारम्भ हुआ और पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति का पता भी भारतीयों को न्यूटन से हज़ारों वर्ष पहिले ही मिल चुका था।

आप भारतीयों के प्रकृति की इस विशेषता को जानते हैं। भारतीय इतिहास में एक ऐसा युग आया था जब भारतीय ऋषियों ने मनुष्य और उसके मन के अध्ययन में अपने को खो दिया था। यह विद्या उनके लिये आकर्षक भी इसीलिये थी कि मनुष्य अपने लक्ष्य की प्राप्ति इस मार्ग से चल कर बहुत आसानी से कर सकता था। मनुष्य का मन सब कुछ कर सकता है, इस विचार से भारतीय मस्तिष्क इतना प्रभावित हुआ कि मन की शक्तियों का अध्ययन उसके लिये एक मात्र महत्वपूर्ण विषय बन गया। इस अध्ययन को उसने अपना लक्ष्य बना लिया। जादू, मंत्र-तंत्र तथा अन्यान्य सिद्धियाँ उनके लिये कोई असाधारण बात न थी। यह भी इतनी सरलता से सिखलाया जाता था जितना कि उसके पूर्व भौतिक शास्त्र। इस प्रकार के विश्वास ने भारतीयों के मन पर इतना प्रभाव डाला कि उनके मन से भौतिक विज्ञानों के अध्ययन की इच्छा मर सी गई। केवल यही वस्तु उनकी दृष्टि के सामने रह गई। योगियों के भिन्न भिन्न सम्प्रदाय अनेक प्रकार के प्रयोग करने लगे। कुछ लोगों ने प्रकाश का अध्ययन और प्रयोग प्रारम्भ किया और देखने लगे कि भिन्न भिन्न प्रकार के रंगों की रोशनी शरीर पर किस प्रकार परिवर्तन लाती है। उन्होंने कुछ विशेष रंग के वस्त्र पहन लिये, उसी रंगीन वातावरण

में रहने लगे और वैसा ही रंगीन भोजन भी करने लगे। सभी प्रकार के प्रयोग इसी प्रकार प्रारम्भ हुए। कुछ ने ध्वनि पर प्रयोग करना प्रारम्भ किया। कान बन्दकर और फिर खोलकर उन्होंने अनुभव किया कि इसकी क्रिया में किस प्रकार का परिवर्तन होता है। कुछ लोगों ने घ्राण-शक्ति पर प्रयोग करना शुरू किया। इस प्रकार भिन्न भिन्न प्रकार के प्रयोग होने लगे।

इन सबके पीछे मुख्य विचार यही था कि मूल स्थान पर कैसे पहुँचा जाय, सूक्ष्म को कैसे जाना जाय और उस पर कैसे प्रभाव स्थापित किया जाय? कुछ साधकों ने तो इस दिशा में काफी चमत्कार दिखाया। कुछ लोग तो हवा में तैरने या इसके बीच से होकर आकाश में इधर से उधर जाने की दिशा में प्रयत्न कर रहे थे। मैं आपको एक कहानी सुनाऊँगा जो मैंने एक पाश्चात्य विद्वान से सुनी थी। उन्हें भी लंका के गवर्नर ने बताया था जिन्होंने स्वयं इस चमत्कारपूर्ण क्रिया को देखा था। एक लड़की सामने लाई गई और उसे पतली पतली लकड़ियाँ आड़ी तिरछी कर बनाई गई एक तिपाई पर पैर के ऊपर पैर रख कर बैठा दिया गया। जब वह ठीक ठीक बैठ गई तो जादूगर ने एक के बाद एक करके उस तिपाई की लकड़ियों का निकालना प्रारम्भ किया और जब सारी लकड़ियाँ निकाल ली गई तो देखा गया कि लड़की हवा में तैर रही है! गवर्नर महोदय ने सोचा कि इसमें कुछ चालाकी है और उन्होंने अपनी तलवार निकाल कर बड़े जोरों से लड़की के नीचे की खाली

जगह में चला दी, पर वह स्थान सचमुच ही खाली था और लड़की हवा में ही बैठी हुई थी! अब आप सोचें कि यह क्या था? यह जादू नहीं था और न कोई असाधारण बात ही थी। यही तो विशेषता है। भारत का रहने वाला कोई भी इस बात को स्वीकार नहीं करेगा कि ऐसी चीज़ें नहीं हो सकतीं। भारतीय के लिये यह वास्तविक है; सत्य है। अपने शत्रुओं से युद्ध करते समय आप जानते हैं एक हिन्दू प्रायः क्या सोचेगा? वह कहेगा कि क्या है? —हमारा एक योगी कहीं से आ जायगा और शत्रुओं की सारी सेना को मार भगायेगा। हिन्दू जाति का यह चरम विश्वास है। हाथ या तलवार में क्या शक्ति है? शक्ति तो केवल आत्मा में है।

यदि यह सत्य है तो विद्वानों के लिये काफी आकर्षण है कि वे इस दिशा में पूर्ण प्रयत्न करें। परन्तु जैसा कि किसी भी विज्ञान के लिये किसी विशेष तथ्य की उपलब्धि अत्यन्त कठिन होती है वैसे ही इस विज्ञान के विषय में भी कठिनाइयाँ हैं—दूसरे विज्ञानों से भी अधिक कठिनाइयाँ हैं। फिर भी बहुत से लोग समझते हैं कि ये शक्तियाँ आसानी से प्राप्त की जा सकती हैं। अपनी भाग्य या स्थिति को बनाने में कितना समय लगाता है? आप सोचें कि इंजीनियरिंग के विद्युत्-विभाग के विज्ञान को समझने में कितने वर्ष लगाने होते हैं? फिर आपको ज्ञात होगा कि इस दिशा में कुछ ज्ञान प्राप्त करने के लिये बचा हुआ सम्पूर्ण जीवन लगा देना होगा।

इसके अतिरिक्त अधिकांश विज्ञानों का विषय जड़ वस्तुएँ ही हैं जो एक स्थान पर जिस दशा में रखी जायँ वहीं पड़ी रहती हैं। आप कुर्सी का विश्लेषण कर सकते है क्योंकि वह हवा में नहीं उड़ती। परन्तु यह विज्ञान मन से सम्बन्धित है जो सर्वदा इधर से उधर होता रहता है। जब आप इसका अध्ययन करना चाहेंगे, सम्भव है वह उस समय कहीं दूसरी जगह चला जाय और आप की पकड़ में न आसके। एक क्षण मन एक स्थिति में है, दूसरे ही क्षण उसकी स्थिति भिन्न हो जाती है। यह सर्वदा बदलता रहता है। इस परिवर्तनशील मन का अध्ययन करना है, उसे समझना है, पकड़ में लाना है और उस पर अधिकार स्थापित करना है। आप स्वयं सोचें कि यह विज्ञान कितना अधिक कठिन है ! इसके लिये विशेष कठिन साधना की आवश्यकता है। लोग मुझसे कहते हैं कि मैं उन्हें व्यावहारिक प्रयोग क्यों नहीं सिखाता। पर यह हँसी खेल नहीं हैं। यहाँ मंच पर खड़ा खड़ा मैं आपसे बातें करूँ और आप घर जाकर उसका कोई लाभ न पायें और न मुझे ही कोई लाभ हो। फिर आप कहें ये सब बेकार बातें हैं, फजूल गप्प है। पर यह बेकार इसीलिये है कि आप इसे बेकार बनाना चाहते हैं। मैं इस विज्ञान के विषय में बहुत कम जानता हूँ पर जो कुछ भी जानता हूँ उसके लिये मुझे जीवन के तीस पूरे वर्ष लगा देने पड़े हैं और उसके बाद छः वर्षों से मैं जो थोड़ा सा जान पाया हूँ उसके विषय में लोगों को बताता चला आ रहा हूँ। इसका ज्ञान प्राप्त करने में मुझे तीस वर्ष लगे और वह भी

विशेष परिश्रम और कठिन साधना के साथ। कभी कभी मैं २०-२० घन्टे साधना करता था। कभी कभी रात में केवल एक घन्टा सोता था और कभी तो वह भी नहीं। रातभर उसी में लगा रहता था। कभी कभी मैं ऐसी जगहों पर रहता था जहाँ मुश्किल से कोई ध्वनि सुनाई पड़ती थी। कभी कभी मुझे कंदराओं और गुफाओं में भी रहना होता था। इतनी साधना के बाद भी मैं इस विज्ञान का थोड़ा अंश जान सका हूँ; कुछ भी नहीं जान सका हूँ यदि यह कहूँ तो भी गलत नहीं है। मै तो इस विज्ञान के बाह्य स्वरूप का केवल एक छोरभर छू सका हूँ, पर मैं इतना समझ सकता हूँ कि यह सत्य है, विशाल है और चमत्कारपूर्ण है।

अब यदि आपमें से कोई इस विज्ञान का अध्ययन करना चाहता है तो उसे उस दृढ़ निश्चय के साथ इसे प्रारम्भ करना चाहिये जिसे लेकर वह अपने जीवन के इतर व्यापारों में लगता है, अथवा यों कहें कि उससे भी अधिक दृढ़ निश्चय के साथ इस ओर प्रवृत्त होना चाहिये।

व्यापार में सफलता प्राप्त करने के लिये कितनी लगन की आवश्यकता होती है! कितना परिश्रम करना होता है! पिता, माता या बच्चा मर जाता है फिर भी व्यापार बन्द नहीं हो सकता! यही नहीं, यदि दिल बैठ रहा हो तो भी अपने व्यापार की जगह जाना पड़ता है—वह भी उस दशा में जब एक एक घंटा काम करना भी जहर मालूम पड़ता है। यह है व्यापार! और हम कहते हैं यही

ठीक है, यही उचित है। यह विज्ञान दूसरे व्यापारों से कहीं अधिक प्रयोगात्मक है। व्यापार में बहुत से लोग सफल हो सकते हैं, परन्तु इसमें बहुत ही कम लोग; क्योंकि यहाँ पर मुख्यतः अध्येता की मानसिक गठन पर ही सब कुछ अवलम्बित रहता है। व्यापार में जैसे प्रत्येक व्यक्ति करोड़पति, अरबपति नहीं बन पाता, पर प्रत्येक कुछ न कुछ कमा लेता है वैसे ही इस विज्ञान की भी अवस्था है। प्रत्येक व्यक्ति कुछ साधना के बाद एक प्रकाश की झलका पा सकता है जिससे उसे विश्वास हो जाय कि यह सत्य है, और अवश्य ही कुछ ऐसे विशिष्ट व्यक्ति हो गये है जिन्होंने इसका पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया है।

इस विज्ञान की यह रूप-रेखा है। यह विज्ञान अपने ही रूप में प्रकाशित है और अपना अलग अस्तित्व रख कर किसी भी दूसरे विज्ञान को तुलना के लिये ललकारता है। इस विज्ञान के क्षेत्र में दूसरे विज्ञानों की अपेक्षा अधिक मिथ्याभाषी हुए हैं, जादूगर हुए हैं और हुए हैं धोखा देने वाले; पर ऐसा क्यों? इसीलिये कि जो व्यापार अधिक लाभप्रद होता है उसी में धोखा देने वाले या भ्रष्टाचार फैलाने वाले लोग अधिक हो जाते हैं। परन्तु यह कोई कारण नहीं है कि वह व्यापार अच्छा नहीं बन सकता। एक चीज़ और, मेरे दिये गये सारे तर्क बौद्धिक व्यायाम के साधन बन सकते हैं, अथवा चमत्कारपूर्ण घटनाओं का वर्णन बौद्धिक संतुष्टि भी दे सकता है, पर यदि आप में से कोई सचमुच इस विज्ञान को जानना

चाहता है तो उसे इस बौद्धिक व्यायाम या संतुष्टि से ऊपर उठना होगा। केवल व्याख्यान का सुनना उसके लिये लाभप्रद नहीं है, क्योंकि व्याख्यान में सिखाई जाने वाली वस्तु यह नहीं है; यह तो जीवन है और जीवन ही जीवन को ले या दे सकता है। आप में से यदि ऐसा कोई हो जो सचमुच सीखना चाहता हो तो उसकी सहायता करने में मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी।

---

२. जीवनगठन की साधनायें

विकास की गति के रुद्ध हो जाने पर हम नीचे की ओर गिरते हैं और विकास के साथ आगे बढ़ते हैं। अतएव हमें इस बात के लिये सतर्क रहना चाहिये कि विकास की गति रुकने न पाये। सर्व-प्रथम तो हमारा शरीर ही हमारे अध्ययन का विषय बनना चाहिये, पर कठिनाई तो यह है कि हम अपने पड़ोसियों के तौर-तरीकों को सुधारने में ही अधिक व्यस्त रहते हैं। हमारा कार्य अपने शरीर से ही प्रारम्भ होना चाहिये। हृदय, यकृत आदि शरीर के ऐसे अंग हैं जो स्वतः विकासोन्मुख नहीं हैं। उन्हें जगाओ; उनके ऊपर आधिपत्य जमाओ और वे तुम्हारी आज्ञा मानकर तुम्हारी इच्छाओं के अनुकूल कार्य करने लगेंगे। एक समय था जब यकृत पर हमारा पूर्ण आधिपत्य था और हम अपने शरीर की सम्पूर्ण चमड़ी को ठीक उसी प्रकार एक साथ ही चालित कर सकते थे जैसे एक गाय। मैंने इस प्रकार के बहुत से व्यक्तियों को देखा है जो केवल कठिन अभ्यास के बल पर ही इस प्रकार का आधिपत्य फिर से प्राप्त कर सकते हैं। एक बार यदि हम अपनी छाप लगा सकें, अपना प्रभाव जमा सकें तो फिर वह स्थायी बन जाता है। अन्तर्निहित कार्यकारी शक्तियों को एक बार अपने प्रभाव में ले लो फिर वे सर्वदा के लिये तुम्हारी

बन जाती हैं। अपने शरीर सम्बन्धी विशेष अध्ययन का यह प्रथम भाग है और सामाजिक प्रगति के लिये अत्यन्त ही आवश्यक है। इसके अतिरिक्त हर समय केवल चेतनशक्ति का ही अध्ययन करते रहना आवश्यक नहीं है।

अपने महान अध्ययन का दूसरा भी भाग, जो आत्मा को मुक्ति की ओर अग्रसर करता है, अपनी विशेषता रखता है; पर वह सामाजिक जीवन के लिये उतना आवश्यक नहीं है। इसका प्रत्यक्ष कार्य आत्मा को स्वतंत्र कर देना, अंधकार में प्रकाश लाना, मलीनता को हटाना तथा साधक को इस योग्य बना देना कि वह अंधकार को चीरता हुआ आगे बढ़ निकले। हमारे जीवन का लक्ष्य है आत्मबोध। जब यह अवस्था प्राप्त हो जाती है तो यही मानव देवता बन जाता है, मुक्त हो जाता है। सर्वातीत हो जाने की इस प्रकार की शिक्षा ग्रहण करने वाले मन के सामने सम्पूर्ण सृष्टि धीरे धीरे अपने रहस्यों को प्रकट करने लगती है। प्रकृति की पुस्तक के अध्याय एक के बाद एक अच्छी तरह समझ में आने लगते हैं और हम अपने अन्तिम लक्ष्य तक पहुँच जाते हैं। जीवन-मरण की गहरी घाटियों से निकल कर हम उस शुद्ध एकत्व की ज्ञान-भूमि में पहुँच जाते है जहाँ जन्म-मरण का अस्तित्व ही नहीं है। हम पूर्ण सत्य को जान लेते हैं और स्वयं वही बन भी जाते हैं।

इस दिशा में पहली आवश्यक वस्तु एकान्त और शान्तिपूर्ण जीवन है। यदि अपने जीविकोपार्जन के लिये हमें दिन भर इधर उधर चक्कर लगाते रहना पड़े तो इस जीवन में 'महान' की

प्राप्ति अत्यन्त ही कठिन है। सम्भव है, इसके लिये फिर दूसरा जन्म लेना पड़े जब परिस्थितियाँ अधिक अनुकूल बन सकें। परन्तु यदि हम अपने लक्ष्य के प्रति सच्चे और दृढ़ हों तो ये प्रतिकूल परिस्थितियाँ इसी जीवन में बदलकर अनुकूल बन जायँगी। ऐसा क्या कभी हुआ है कि जिस वस्तु को तुमने सच्चाई से चाहा वह नहीं मिली? ऐसा सम्भव नहीं। आवश्यकता और सच्ची इच्छा ने ही शरीर को जन्म दिया है। यह प्रकाश ही है जिसने तुम्हारे शिर में मानो दो छेद कर दिये हैं जिन्हें तुम आँख कहते हो। यदि प्रकाश का अस्तित्व न होता तो तुम्हारी आँखों का भी अस्तित्व सम्भव नहीं था। ध्वनि ने ही कान का निर्माण किया है। हमारी इन्द्रियों की रचना के पहिले ही इन्द्रियग्राह्य विषय विद्यमान थे। सम्भव है कुछ लाख वर्षों में या इससे पूर्व ही बिजली अथवा इस प्रकार की दूसरी वस्तुओं को देखने के लिये हमारे पास दूसरी इन्द्रियाँ उत्पन्न हो जायँ। शान्त मन में कोई इच्छा नहीं होती। इच्छाओं की पूर्ति के साधन यदि बाह्य जगत में न हों तो इच्छाएँ उत्पन्न ही नहीं हो सकतीं। बाह्य जगत की वस्तुएँ हमारे शरीर में मानो छेद बनाती हैं और फिर मन अथवा बुद्धि में प्रवेश करने का प्रयत्न करती हैं। इसलिये जब हमारे मन में ऐसा एकान्त और शान्त जीवन व्यतीत करने की इच्छा उत्पन्न हो जायगी जिसमें मानसिक विकास के लिये अनुकूल परिस्थितियाँ विद्यमान हों तो वह इच्छा अवश्य ही पूर्ण होगी—मेरे व्यक्तिगत अनुभव के रूप में आप इसे

स्वीकार कर सकते हैं। उस इच्छा के पूर्ण होने में सहस्रों जीवन भले ही धारण करने पड़ें, पर वह इच्छा पूर्ण अवश्य होगी। हाँ, उस इच्छा को छोड़ो नहीं; उसके प्रति सच्चे बने रहो; उसे पूर्ण करने का प्रयत्न दृढ़तापूर्वक करते रहो। तुम्हारी इच्छा किसी ऐसी वस्तु के प्रति बलवान नहीं बन सकती है जिसका अस्तित्व तुम्हारे लिये बाह्य जगत में पहिले ही से न रहा हो। पर हाँ, यह आवश्यक है कि तुम यह ठीक ठीक समझ लो कि भिन्न भिन्न प्रकार की इच्छाओं में अन्तर है। गुरु ने जब शिष्य से कहा, "वत्स, यदि तुम ईश्वर की इच्छा करो तो वह तुम्हें अवश्य मिल जायगा" तो शिष्य की समझ में ठीक ठीक नहीं बैठा। एक दिन दोनों नदी स्नान को गये। गुरु ने कहा, "नदी में कूद पड़ो।" बालक-शिष्य ने ऐसा ही किया। शिष्य के पानी मे डुबकी लगाते ही गुरु ने झपट कर उसे नीचे धर दबाया। बालक ऊपर आने की कोशिश करने लगा पर गुरु ने ज़ोर से दबा रखा था इसलिये ऊपर आना सम्भव नहीं था। बालक पानी के अन्दर छटपटाने लगा पर गुरुजी कब छोड़ने वाले थे। उन्होंने जब यह जान लिया कि बालक बहुत थक गया तो उसे छोड़ दिया और वह ऊपर आगया। गुरु ने पूछा, "मेरे बच्चे! तुम्हें पानी के अन्दर कैसा मालूम पड़ता था?" बालक ने उत्तर दिया, "गुरुजी, मैं साँस लेने के लिये बुरी तरह घबड़ा रहा था।" गुरु ने फिर पूछा, "क्या ईश्वर के लिये भी तुम्हारे मन में वैसी ही इच्छा, वैसी ही तड़पन पैदा होती है?"

उत्तर नकारात्मक ही मिला। गुरु ने कहा, "जाओ वैसी ही प्रबल इच्छा अपने मन में भगवान की प्राप्ति के लिये करो, भगवान अवश्य ही मिल जायँगे।"

जिसके बिना हम जीवित रह ही नहीं सकते, वह हमें प्राप्त होगा ही। यदि हमें उसकी प्राप्ति न होती तो जीवन असम्भव हो जाता। यदि तुम्हें योगी होना है तो अपने को विश्व की सारी चिन्ताओं से मुक्त कर लो, ऐसी परिस्थिति का निर्माण करो जिसमें तुम अपने को एकान्त शान्त मनःस्थिति में पा सको। वह व्यक्ति जो विलासमय आराम तलब जीवन व्यतीत करता हुआ स्वयं को, अपने वास्तविक स्वरूप को पहिचानना चाहता है उसकी दशा ठीक उस मूर्ख की सी है जो नदी को पार करने के लिये किसी मगर को लकड़ी का टुकड़ा समझ कर पकड़ लेता है। "सर्वप्रथम भगवान के राज्य की खोज करो, सदाचार की प्राप्ति कर लो, फिर अन्य आवश्यक वस्तुएँ आप से आप तुम्हारे पास आजायँगी।" जो व्यक्ति सच्चाई के साथ किसी वस्तु की परवाह नहीं करता उसके पास सारी वस्तुएँ आप से आप आ जाती हैं। तक़दीर मानो नखरा करने वाली उस नायिका के समान है जो उस व्यक्ति की परवाह भी नहीं करती जो उसे चाहता है, पर दूसरे के पैरों पर पड़ कर रहना चाहती है जो स्वयं उसकी तनिक भी परवाह नहीं करता।

लक्ष्मी उसकी चेरी बनकर रहना चाहती है जो उसकी तनिक भी चिन्ता नहीं करता? नाम-यश और प्रतिष्ठा भी उस व्यक्ति पर

बरसे पड़ते हैं जो उन्हें बोझ समझता है, कष्टदायक समझता है। ये सब बातें उसीको प्राप्त होती हैं जो स्वयं का स्वामी है। दास को कुछ भी नहीं प्राप्त होता। स्वामी वह है जो उनके अभाव में भी मस्ती से रह सकता है; स्वामी वह है जिसके जीवन पर संसार की तुच्छ बातों का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता और वह उनके अभाव में भी प्रसन्नतापूर्वक अपना कार्य करता रहता है। जीवन में आदर्श को अपनाओ पर वह आदर्श इतना ऊँचा, इतना महान हो कि उसके सामने संसार की दूसरी तमाम चीज़ें तुच्छ मालूम पड़ें। उसे छोड़, मन में और किसी वस्तु के लिये इच्छा ही पैदा न हो। उस एक लक्ष्य को छोड़ दूसरे किसी भी विषय पर विचार करने के लिये समय ही न मिल सके।

कुछ लोग धनिक बनने की लालसा को पूरी करने के लिये किस प्रकार अपनी सारी शक्ति, समय, मस्तिष्क और शरीर को लगा देते हैं, देखकर आश्चर्य होता है। उन्हें भोजन, जलपान तक के लिये समय नहीं मिलता। प्रातःकाल तड़के वे अपने कार्य-साधन के लिये निकल पड़ते हैं, जुट जाते हैं। फिर भी आप जानते हैं उनमें से लगभग नब्बे प्रतिशत धनी बनने के प्रयत्न में अपनी जीवन-क्रिया समाप्त कर लेते हैं और फिर भी सफल नहीं हो पाते। बाकी बचे हुए दस प्रतिशत यदि पैसा पैदा भी कर लेते हैं तो उसका उपभोग नहीं कर पाते। मैं यह नहीं कहता कि सम्पत्तिवान बनने का प्रयत्न करना बुरा है। यह प्रयत्न भी आश्चर्य जनक है,

सुन्दर है, आकर्षक है। वह बतलाता है कि जिस श्रद्धा और तन्मयता के साथ धनिक बननेवाला अपने धन को एकत्रित करने में परिश्रम करता है, व्यक्तिविशेष उस तन्मयता, एकनिष्ठा और संघर्ष का उपयोग अपने को मुक्त करने के लिये भी कर सकता है। हम जानते हैं कि मरने के साथ ही हमें सारी सम्पत्ति छोड़ने को बाध्य होना पड़ेगा फिर भी उसके जोड़ते रहने में हम कितनी शक्ति लगाते हैं! फिर क्या हम मानव उस विशेष वस्तु को प्राप्त करने के लिये (जो कभी धूमिल नहीं होती, यही नहीं, हमारे पास सर्वदा के लिये बनी रहती है) धन-प्राप्ति के लिये किये गये प्रयत्न की अपेक्षा सहस्रगुनी अधिक शक्ति न लगायें? क्योंकि यही वह सच्चा मित्र है जो मृत्यु के बाद भी हमारा साथ देता है। हमारे आध्यात्मिक गुण तथा हमारे उत्तम कार्य ही हमारे हैं, हमारा साथ देने वाले हैं। अन्य तमाम वस्तुएँ यहीं इस शरीर के साथ ही रह जाने वाली हैं।

अपने आदर्श के लिये सच्ची इच्छा ही उसे प्राप्त करने के लिये पहिली महत्वपूर्ण सीढ़ी है। उस सीढ़ी पर पहुँचने के बाद दूसरी चीज़ें सरल हो जाती हैं। भारतीय विचारकों ने इसे ही महत्व दिया है। इसीलिये, भारतवासी सत्य के अन्वेषण के लिये कोई भी कठिन कार्य करने को सर्वदा तैयार रहता है। परन्तु यहाँ पश्चिम में सभी चीज़ें सरल, बहुत ही सरल बना दी गई हैं और इसीलिये अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होने की एकान्त निष्ठा प्राप्त करने के मार्ग में कठिनाई का अनुभव होता है। यहाँ, जीवन का लक्ष्य

सत्य नहीं, वरन् विकास है—भौतिक वृद्धि है। संघर्ष एक महत्वपूर्ण शिक्षा है। यही नहीं, आप मान लें कि संघर्ष इस जीवन का बहुत बड़ा लाभ है। इसी संघर्ष के बीच से ही हम आगे बढ़ते हैं। स्वर्ग तक पहुँचने की यदि कोई सड़क है तो वह नरक के बीच से ही होकर जाती है। नरक से होकर ही स्वर्ग का मार्ग है। जब आत्मा वातावरण और परिस्थितियों से संघर्ष करता हुआ आगे बढ़ने में असफल होता है—बार बार असफल होता है और फिर भी निर्भीक होकर आगे बढ़ने के लिये संघर्ष करता है तो अन्त में वह शक्तिपुञ्ज बनकर सामने आता है और हँस देता है उस आदर्श पर जिसे प्राप्त करने के लिये वह सतत प्रयत्नशील रहा; क्योंकि उसे यह बात मालूम हो जाती है कि वह स्वयं उस आदर्श से कहीं बड़ा और ऊँचा है। मैं स्वयं ही अपना लक्ष्य हूँ। मेरा लक्ष्य और कुछ नहीं है। संसार में और कौन सी वस्तु है जिसकी तुलना उस आत्मा से हो सकती है? सोने से भरा हुआ थैला क्या हमारे जीवन का लक्ष्य बन सकता है? कदापि नहीं। हमारी आत्मा ही सबसे ऊँचा आदर्श है जिसे हमें प्राप्त करना है। अपने स्वयं के स्वरूप का साक्षात्कार कर लेना ही जीवन का एक मात्र लक्ष्य है।

संसार में ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो सम्पूर्णतया बुरी हो—असत् हो। यहाँ भगवान के साथ ही साथ शैतान को भी स्थान है—उसका भी निवास है। मैंने आपसे पहले ही कहा है कि नरक से होकर ही स्वर्ग का मार्ग है। हमारी असफलताओं, कमज़ोरियों और

त्रुटियों को भी यहाँ स्थान है। आगे बढ़ो। यदि तुम सोचते हो कि तुमने कुछ ऐसा कर डाला है जो ठीक नहीं है फिर भी पीछे की ओर मत मुड़ो; आगे बढ़ते जाओ। यदि तुमने भूलें न की होतीं तो क्या तुम्हें विश्वास है कि तुम वह बन सके होते जो आज तुम बन सके हो? यदि नहीं तो अपनी भूलों को साधुवाद दो—धन्यवाद दो। वे देवदूत के समान थीं जिन्हें हमने पहचाना भी नहीं। यातनायें और आनन्द दोनों ही धन्यवाद के पात्र हैं। तुम स्वयं इसकी चिन्ता मत करो कि तुम्हारे भाग्य में क्या बदा है, तुम्हें क्या मिलने वाला है। अपने आदर्श पर डटे रहो; आगे बढ़ते जाओ। छोटी छोटी भूलों और साधारण बातों पर पीछे मुड़ कर मत देखो। हमारे जीवन के इस युद्ध-क्षेत्र में भूलों की गर्द तो उठेगी ही। जो इतने नाजुक हैं कि उस उठी हुई गर्द को स्वीकार नहीं कर सकते उन्हें सैनिकों के बीच से अलग ही हो जाना चाहिये।

अतएव इस जीवन के लिये सांसारिक आवश्यक पदार्थों को प्राप्त करने में जिस निश्चय से हम काम लेते हैं उससे सैकड़ों गुना अधिक शक्तिशाली और दृढ़ निश्चय हमारे मन में उस विशिष्ट संघर्ष के लिये होना चाहिये। यही पहली और महत्वपूर्ण तैयारी है उस दिव्य साधना के लिये।

इसके साथ ही चिन्तन की आवश्यकता है। यह चिन्तन अथवा मनन एक आवश्यक वस्तु है। यही नहीं, यह सबसे अधिक महत्वपूर्ण और ऊँचा है। आध्यात्मिक अनुभूति प्राप्त करने का यह

सबसे निकट का साधन है। हमारे दैनिक व्यस्त जीवन के बीच यह वह अमूल्य क्षण है जिसमें हम सांसारिकता से ऊपर उठ जाते हैं जब आत्मा शुद्ध स्वरूप में मानो स्वयं का चिन्तन करती है। यह वह क्षण है जिसमें एक विशिष्ट आत्मानन्द के स्पर्श का अनुभव होता है।

शरीर हम लोगों का शत्रु है पर साथ ही मित्र भी है। तुममें से कितने लोग दुःख के दृश्य को सहन कर सकते हैं? कोई चित्रकार दुःख या यातना का दृश्य जब अपनी चित्रकारी में दिखाता है तो आपमें से कौन उसे सहन नहीं कर लेता? हम जानते हैं कि चित्रपट पर दिखाया गया दुःख या शोक का चित्र केवल चित्र मात्र है, असत् है, अवास्तविक है, अतएव प्रत्यक्षत: हमसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। वह न तो हमारा कल्याण कर सकता है और न उसमें हमारे अकल्याण करने की ही शक्ति है। यही नहीं, कठोरतम दुःख के चित्र यदि चित्रपट पर खींच दिये जायँ तो हम उसमें आनन्द भी ले सकते हैं। हम कलाकार की सुन्दर व्यञ्जक कला की प्रशंसा करते हैं; उसके मस्तिष्क की असाधारण व्यञ्जक शक्ति पर आश्चर्य करते हैं—यह जान कर भी कि उसके द्वारा बनाया गया चित्र भयंकरता की कठोरतम अभिव्यक्ति है। यही जीवन का रहस्य है—यही अनासक्ति। अतएव केवल दर्शक मात्र के रूप में ही रहो।

अष्टाङ्गिक योग की कोई भी शिक्षा उस समय तक किसी काम की नहीं जब तक कि आप उस अवस्था तक पहुँच न जायँ जहाँ

पहुँच कर आप अपने को दर्शक मात्र मान सकें। अत्याचारी के हाथ जब तुम्हारी गर्दन को स्पर्श करने लगें तो तुम्हारे हृदय से यह ध्वनि निकले कि मैं दर्शक हूँ, मैं दर्शक हूँ, मैं आत्मा हूँ और बाह्य जगत की कोई वस्तु मुझे स्पर्श नहीं कर सकती। बुरे विचार जब मन में उठें उस समय भी यही ध्वनि बार बार निकले कि मैं आत्मा हूँ, दर्शक हूँ; और इसी असाधारण हथौड़े की चोट सभी अशुभ विचारों के शिर पर पड़े तथा सारी शक्ति लगा कर बोल उठो—"मैं आत्मा हूँ, दर्शक हूँ, नित्य शुभ और कल्याण हूँ; दुःख देने की बात तो दूर है। बुरे विचार मुझे स्पर्श तक नहीं कर सकते। मैंने सारी बाह्य वस्तुओं से अपना पिण्ड छुड़ा लिया है; मैं केवल दर्शक मात्र रह गया हूँ। यह सारी सृष्टि मेरा एक अजायब घर है और मैं स्वयं इसी अजायब घर की चित्रशाला में हूँ। इस अजायब घर के चित्र एक के बाद एक मेरे सामने आते जाते हैं और मैं उन्हें देखता जाता हूँ। वे शुभ हों या अशुभ, सभी सुन्दर हैं। सभी में चित्रकार की तूलिका की आश्चर्य जनक प्रतिभा का आभास है और सभी एक समान हैं। ये सब उस महान चित्रकार—परमा —की तूलिका से अंकित अद्भुत अनन्त चित्र हैं!" वास्तविकता तो यह है कि संकल्प अथवा इच्छा भी कुछ नहीं है। केवल वह परमात्मा ही है और कहीं कुछ नहीं। वह परमात्मा, वह चिद् शक्ति, वह जगन्माता लीला कर रही है, उसके खेल के हम खिलौने हैं, उसके खेल में हम सहायक है। कभी वह भिखारी के रूप में किसी को सामने रखती है तो दूसरे ही क्षण उसे राजा बना कर

सामने लाती है; कभी धर्मात्मा का स्वाँग सामने आता है तो कभी शैतान की करामात का दृश्य दिखाई पड़ने लगता है। उस चित् शक्ति जगन्माता के नाटक में, उसकी सहायता के लिये, हम भिन्न भिन्न रूप मात्र धारण कर रहे हैं।

शिशु यदि खेल रहा है तो माँ के बुलाने पर भी वह खेल छोड़कर नहीं आता। परन्तु जब खेल समाप्त हो जाता है तो वह अपनी माँ के पास दौड़ जाता है और फिर 'ना' कभी नहीं करता। इसी प्रकार हमारे जीवन में एक क्षण आता है जब हम समझते हैं कि हमारा खेल समाप्त हो गया और फिर हम दौड़कर 'माँ' के पास जाना चाहते हैं। उस समय यहाँ पर किये गये सारे परिश्रम का कुछ भी मूल्य नहीं रह जाता। पुरुष, स्त्री, बालक, मृत्यु, नाम और प्रतिष्ठा, ख और सम्मान, दण्ड और सफलता आदि कुछ भी नहीं रह जाते। सतत संगीत की अनन्त झंकार सुनाई पड़ती है। हम जान भी नहीं पाते कि इसका उद्देश्य क्या है अथवा यह जा भी कहाँ रही है? हम तो केवल इतना ही कह सकते हैं कि हमारा खेल समाप्त हो गया।

लक्ष्य और उसकी प्राप्ति के मार्ग

मानव जाति के लिये यह सबसे बड़े दुर्भाग्य की बात होगी यदि विश्व में एक ही धर्म हो, पूजन की एक ही विधि हो और नीति का एक ही धरातल हो। सभी धार्मिक और आध्यात्मिक प्रगतियों के लिये यह बड़ा घातक होगा। अतएव हमारे ऊँचे से ऊँचे सत्य के आदर्श से सहमत होने के लिये दूसरे लोगों को प्रलोभित करने के प्रयत्न की अपेक्षा असल में हमें उन सभी रुकावटों को दूर कर देने का प्रयास करना चाहिये जो उन लोगों के लिये अपने ही अत्युच्च आदर्श के अनुसार अग्रसर होने में बाधक होती हैं और इस प्रकार एकमेव विश्वधर्म की स्थापना के लिये किये गये उनके प्रयत्नों को व्यर्थ कर देना चाहिये।

सम्पूर्ण मानव जाति तथा सभी धर्मों का अन्तिम लक्ष्य बस एक है और वह है परमात्मा के साथ फिर एक होजाना, अर्थात् उस ईश्वरत्व की प्राप्ति कर लेना जो कि प्रत्येक व्यक्ति का प्रकृत स्वरूप है। परन्तु लक्ष्य के एक होने पर भी उसकी प्राप्ति के मार्ग व्यक्ति की भिन्न भिन्न प्रकृति के अनुसार भिन्न भिन्न हो सकते हैं।

लक्ष्य और उसकी प्राप्ति के मार्ग को 'योग' कहते हैं। यह शब्द संस्कृत के उसी धातु से निकला है जिससे अंग्रेजी का योक (Yoke) शब्द—जिसका तात्पर्य 'मिलाना' होता है—आत्मा का परमात्मा से अथवा जीव का ब्रह्म से मेल। इस सम्मिलन की क्रिया को सम्पन्न करने वाले कई प्रकार के योग अथवा मार्ग हैं, पर उनमें से मुख्य हैं कर्मयोग, भक्तियोग, राजयोग तथा ज्ञानयोग।

लक्ष्य और उसकी प्राप्ति के मार्ग

प्रत्येक व्यक्ति को अपनी अपनी प्रकृति के अनुसार विकसित होना चाहिये। जिस प्रकार प्रत्येक विज्ञान का अपना अलग अलग तरीका होता है, उसी प्रकार धर्म का भी है। धर्म के अन्तिम लक्ष्य की प्राप्ति के लिये अपनाये गये मार्ग को हम लोग योग कहते हैं और जिन भिन्न भिन्न योगों की हम शिक्षा देते हैं, वे व्यक्ति की भिन्न भिन्न प्रकृति से मेल खाते हैं। हम उन्हे निम्नलिखित प्रकार से चार भागों में रखते हैं: —

(१) कर्मयोग—अपने कर्म और कर्तव्य की पूर्ति के द्वारा अपने स्वयं के ईश्वरत्व की प्राप्ति का मार्ग।

(२) भक्तियोग—सगुण ब्रह्म के प्रति निष्ठा एवं प्रेम द्वारा ईश्वरत्व की प्राप्ति का मार्ग।

(३) राजयोग—मन पर आधिपत्य जमाकर ईश्वरत्व की प्राप्ति का मार्ग।

(४) ज्ञानयोग—ज्ञान द्वारा मनुष्य के स्वय के ईश्वरत्व की प्राप्ति का मार्ग।

ये सभी राजमार्ग उसी एक केन्द्र में—परमात्मा में ले जाने वाले हैं। वास्तव में भिन्न भिन्न धर्मों के भिन्न भिन्न विश्वास लाभप्रद ही हैं, क्योंकि सभी धर्म, जो व्यक्ति को आध्यात्मिक अथवा धार्मिक जीवन व्यतीत करने के लिये उत्साहित करते हैं, अच्छे होते हैं। मतमतान्तरों और सम्प्रदायों की संख्या जितनी ही अधिक होगी उतने ही अधिक सुयोग हमें अपने अन्तर में स्थित परमात्मा के साथ युक्त होने के लिये मिलेंगे।